E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(1): 210-212
Received: 12-06-2019
Accepted: 17-07-2019

मुकेश कुमार महतो
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग,
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
भारत

Corresponding Author:
मुकेश कुमार महतो
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग,
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
भारत

प्रसाद के नाटकों की प्रासंगिकता

मुकेश कुमार महतो

सारांश
'मैं किसी नाटक के संबंध में पूछता हूँ, प्रथम, नाटकीय प्रश्न, दारुशिल्पी का प्रश्न–इसकी तत्वात्मक शक्ति क्या है? यह शक्ति किस प्रकार निर्मक्त की जा सकती है? द्वितीय, मानवीय प्रश्न–जाति की उत्तरजीविता के लिए इसकी मूलभूत प्रासंगिकता क्या है?' यह विचार है प्रसिद्ध अमरीकी नाटककार आर्थर मिलर का। नाट्यालोचन के लिए दोनों ही प्रश्न अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण हैं। इन प्रश्नों के क्रम के संबंध में मतभेद हो सकता है। जातीय जीवन के लिए रचना विशेष की प्रासंगिकता ही उसके तत्वात्मक विश्लेषण एवं अध्ययन को सार्थकता प्रदान करती है, इस दृष्टि से प्रासंगिकता के प्रश्न को पहले उठाया जा सकता है। प्रसाद के नाटकों के स्थापत्यविवेचन के पूर्व इस प्रश्न पर विचार कर लेना उचित होगा कि हमारे वर्तमान एवं भविष्य के संदर्भ में प्रसाद के नाटक कहाँ तक प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द– प्रसाद के नाटकों, नाटकों के सांस्कृतिक मूल्य

प्रस्तावना
प्रसाद के नाटक अपने युग की उपज हैं। उनमें तत्कालीन राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति किस प्रकार हुई है, इसका विस्तृत अध्ययन किया गया है।[1] युग चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका महत्व हिंदी नाट्यालोचन का एक स्वीकृत तथ्य है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि यद्यपि प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक हैं, 'पर उनमें आधुनिक आदर्शों और भावनाओं का आभास इधर–उधर बिखरा मिलता है, स्कन्दगप्त और चन्द्रगप्त दोनों में स्वदेशप्रम, विश्वप्रेम और आध्यात्मिकता का आधुनिक रूप–रंग बराबर झलकता है। आजकल के मजहबी दंगों का स्वरूप भी हम स्कन्दगुप्त में देख सकते हैं।'[2] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जब कहते हैं कि 'प्रसादजी के नाटकों से भारतवर्ष की अन्तर्चेतना के दर्शन का सिंहद्वार अनावत हो गया है'[3], तब नाटकों के सांस्कृतिक मूल्य को ही रेखांकित करते हैं। डा० नगेन्द्र और डा० इन्द्रनाथ मदान प्रसाद की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना, राष्ट्रीयता के प्रति उनके आग्रह आदि के कारण प्रसाद को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ नाटककार घोषित करते हैं।[4]
प्रसाद के नाटकों में उनका युग मुखरित हुआ है, इससे उनकी महत्ता सिद्ध होती है। स्पेनिश कवि और नाटककार लोर्का ने लिखा है कि रंगमंच किसी देश के आत्मिक उन्नयन के सर्वाधिक उपयोगी एवं सार्थक साधनों में से है–वह तापमापकयंत्र है जो उसके उत्थान या पतन को अंकित करता है।[5] प्रसाद के नाटकों में उनके समय का ताप अंकित है। उनमें प्रसाद के समकालीन पराधीन भारत का उद्वेग भी है, उसकी मुक्ति आकांक्षा भी। प्रसाद के नाटक हैं जिनमें 'आज आर्य जाति का प्रत्येक बच्चा सैनिक है' और जाति अपने सम्राट को 'उद्धार–युद्ध में सेनानी बनने के लिए' पुकारती है[6], जिनमें वीर विदेशी आक्रमण का सामना करते हैं और बंधवर्मा की तरह उद्धारयुद्ध में अपने प्राणों की आहुति देते हैं, जिनमें क्षेत्रीयता और सांप्रदायिकता की भावनाओं का खंडन कर राष्ट्रीय एकता की प्रतिष्ठा की जाती है[7], जिनमें पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित होती हुई भारतीय स्थिति के प्रति विक्षोभ का स्वर भी सुनाई पड़ता है[8] और कादंब–कंचन की संस्कृति से मुक्ति की बेचौनी भी परिलक्षित होती है।[9] प्रसाद के नाटकों में उस भव्य भारत की गौरवगाथा है जो स्वप्नों का देश है, त्याग और ज्ञान का पालना है, प्रेम की रंगभूमि है, मानवता की जन्मभूमि है, और जहाँ के वीर असीम साहमी और दुर्जेय हैं।[10] इन नाटकों में भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण का स्पष्ट स्वर है।
प्रसाद ने अपने नाटकों में अपने समय और देश को प्रत्यक्षतः चित्रित नहीं किया है, बल्कि। उसे इतिहास के दर्पण में प्रतिबिंबित किया है। विक्टर ह्यगो ने लिखा है कि नाटक जीवन का सपाट शीशा नहीं है जो वास्तविकता का यथातथ्य किंतु रंगहीन बिंब प्रस्तुत करता है, बल्कि संकेंद्रित करनेवाला ऐसा शीशा है जो रंजित किरणों को सघन बनाता है, और चमक को रोशनी में, रोशनी को लौ में बदल देता है।[11] प्रसाद ने यही किया है। उन्होंने वर्तमान को अतीत के शीशे में रंजित और सघन बना कर प्रस्तुत किया है। इतिहास को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बना कर भी उन्होंने इतिहास की आवृत्ति नहीं की है।

जर्मन कवि और नाटककार गेटे के विचार ध्यातव्य है कि कवि इतिहासकार के अभिलेखों की यदि आवृत्ति ही करता है, तो उसकी महत्ता क्या है? कवि को इससे आगे जाना चाहिए, और यदि संभव हो तो हमें कुछ उच्चतर एवं महत्तर प्रदान करना चाहिए।[12] प्रसाद के नाटकों में यह 'उच्चतर एवं महत्तर' 'कुछ' है।

प्रश्न होता है कि प्रसाद ने इतिहास का आधार क्यों ग्रहण किया? इसके अनेक उत्तर दिए जाते हैं। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि 'वर्तमान से विमुख होने के कारण (जैसा रोमान्टिक व्यक्ति के लिए आवश्यक है) वह पुरातन की ओर जायगा–या कल्पना–लोक की ओर। प्रसाद का यही रोमान्टिक दृष्टिकोण उनकी सांस्कृतिक चेतना के लिए उत्तरदायी है।'[13] प्रो० केसरी कुमार इसके तीन कारण बतलाते हैं : पश्चिमी सभ्यता की भौतिकता के विरुद्ध भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता की प्रतिक्रिया, छायावादवाली पलायन मनोवृत्ति और प्रसाद का निजी रोमांटिक दृष्टिकोण।[14] डा० गोविन्द चातक ने कुछ कारणों का संकेत किया है : छायावादीस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति, 'वर्तमान की दासता, असन्तोष, आदर्शों का अभाव तथा अतीत के नैसर्गिक और सुखी जीवन के प्रति प्रशंसा का भाव', 'देशभक्ति का विश्वास काल्पनिक कथानक से नहीं जगाया जा सकता'।[15] इन उत्तरों में सत्यांश है, इसमें संदेह नहीं, लेकिन कुछ बिन्दु विचारणीय हैं। 'कामना', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में आधनिक युग की जिन समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है, उनसे स्पष्ट है कि प्रसाद का प्रयत्न वर्तमान से पलायन का नहीं है। छायावादी काव्य के समकालीन हिंदी के यथार्थवादी कथासाहित्य को देखते हए यह भी नहीं कहा जा सकता कि अतीत के प्रति छायावाद का आग्रह तत्कालीन परिस्थितियों की देन है। देशभक्ति के विश्वास के लिए ऐतिहासिक कथानक अनिवार्य ही है, यह भी नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रसादोत्तर काल का 'नेफा की एक शाम' देशभक्ति का प्रभावशाली नाटक है, पर उसका कथानक काल्पनिक है। विद्वान जिसे प्रसाद का रोमांटिक दृष्टिकोण कहते हैं, वही उनके ऐतिहासिक आधारग्रहण के मूल में है, लेकिन इसमें उनकी इतिहास संबंधी धारणा का भी योग है। लियो एलेन ने लिखा है कि जब तक कोई इतिहास की अर्थवत्ता में, किसी व्यवस्था के अंशरूप में घटनाओं की व्याख्या किए जाने की संभावना में, विश्वास नहीं करता, तब तक अतीत की ओर देखने की क्रिया का कोई अर्थ नहीं होता।[16] प्रसाद अतीत को वर्तमाननिरपेक्ष कालखंड नहीं मानते, और यहाँ तक कहते हैं कि 'इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होते देखी जाती है।'[17] प्रसाद यह भी मानते हैं कि देश की परंपरागत सभ्यता और आदर्श ही उसके अनुकूल होते हैं, और 'इतिहास का अनुशीलन किसी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।'[18] इतिहास की इस धारणा ने प्रसाद को जहां अतीतदर्शन की ओर अग्रसर किया, वहीं उनके रोमांटिक दृष्टिकोण ने वर्तमान को वर्तमान में न देख कर अतीत में देखने को प्रेरित किया। प्रसाद का अतीतदर्शन वर्तमान से पलायन नहीं है, बल्कि वर्तमानदर्शन की ही एक पद्धति है। यूनानी पुराकथा की राक्षसी मेडुसा को प्रत्यक्षतः देख कर कोई मार नहीं सकता था, वीर पसियस ने अपनी ढाल में उसका प्रतिबिम्ब। देख कर उसका वध किया था।[19] प्रसाद ने वर्तमान को अतीत पर प्रक्षेपित कर के अपनी युगचेतना की अभिव्यक्ति की है। यग की सशक्त अभिव्यक्ति के कारण ही प्रसाद के नाटक अपने समय में अत्यंत समादृत हुए। तत्कालीन समीक्षाएँ इसका प्रमाण है। 'अजातशत्र' की समीक्षा करते हुए जगदीश झा 'विमल' ने लिखा था : 'हिन्दू सभ्यता का उच्चादर्श, हिन्दू प्रभुता का प्रचण्ड प्रताप और हिन्दू संस्कृति का उज्ज्वल चित्र अंकित करने में प्रसादजी सचमच बड़े सिद्धहस्त है।'[20] राजेश्वर प्रसाद अर्गल ने विचार व्यक्त किया थाः 'प्रसादजी का साहित्य केवल देश–सेवा का साधन मात्र था। साहित्य–सेवा उनका प्रथम उद्देश्य नहीं जान पड़ता। अतएव उनके नाटकों में केवल साहित्य देखना उनके प्रति अन्याय करना है। अपने नाटकों में वे इस आदर्श में पूर्ण सफल भी हुए हैं और इनके द्वारा जो देश–सेवा उन्होंने की है वह कोई भी हिन्दी संसार में नहीं कर सका है। महात्माजी ने क्रियात्मक देश सेवा के क्षेत्र में जो कुछ किया है प्रसादजी ने वही साहित्य क्षेत्र में और इस रूप में प्रसादजी का स्थान हमारे राष्ट्रीय नेता से किसी प्रकार कम नहीं।'[21]

प्रसाद के नाटक स्वाधीनतापूर्व के भारतीय संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक रहे, इसमें संदेह नहीं। प्रश्न आज और आगामी कल के लिए उनकी प्रासंगिकता का है। प्रो० शिलीमख ने लिखा था : '''स्कन्दगुप्त' तब तक बराबर सामयिक रहेगा जब तक भारत का स्वातंत्र्य–युद्ध सफल। नहीं होता। उसके बाद वह हमारे इस युद्ध के इतिहास का एक उज्ज्वल अंग समझा जाएगा।''[22] स्वातंत्र्य यद्ध सफल हो गया है, और प्रश्न है कि 'स्कन्दगुप्त' और प्रसाद के अन्य नाटक उस यद्ध के स्मारक मात्र बन कर रह गए हैं या आज भी उनकी कोई प्रासंगिकता है? रचनाकाल या यग विशेष के बाद भी किसी रचना की प्रासंगिकता के लिए उसमें सामयिक चेतना से कुछ अधिक की अपेक्षा होती है। इस 'कुछ' का संकेत अध्याय के प्रारंभ में उद्धृत आर्थर मिलर के विचार में आया है कि किसी रचना में जाति को जीवित बनाए रखने में योग देनेवाले तत्वों का होना आवश्यक है। इस प्रसंग में नाटककार इब्सन के विचार भी ध्यातव्य है कि कदि का काम अपने समय और अपनी जाति को उद्वेलित करनेवाले सामयिक एवं शाश्वत प्रश्नों को स्वयं समझना और दूसरों को समझाना है।[23] सामयिक प्रश्नों के साथ शाश्वत तत्वों का रहना भी प्रासंगिकता के लिए आवश्यक है। जातीय उत्तरजीविता एवं शाश्वत तत्वों की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों को देखना चाहिए।

प्रसाद के नाटक भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित हैं। किसी भी राष्ट्र के जीवन के लिए यह चेतना अनिवार्य है। जब तक राष्ट्र रहेगा, राष्ट्रीय भावना की आवश्यकता बनी रहेगी और अपनी सांस्कृतिक महत्ता का बोध अपेक्षित रहेगा। प्रसाद ने जिस रूप में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है, वह केवल सामयिक नहीं है, उनके समय के पहले की भी है, उनके समय के बाद की भी। उन्होंने सामयिक घटनाओं को चित्रित नहीं किया है, सामयिक चेतना को अभिव्यक्त किया है। इतिहास के आधार से यह सुविधा प्राप्त हुई है कि सामयिक चेतना समय में विस्तार पा सके। जब तक यह देश अपनी स्वाधीनता के प्रति सजग रहेगा (सजगता ही स्वाधीनता का मूल्य है), जब तक इस विशाल देश में अनेक राज्य रहेंगे, जब तक इस देश में अनेक धर्म और संप्रदाय रहेंगे, जब तक देश के लिए बलिदान होने की आवश्यकता रहेगी, तब तक प्रसाद के नाटकों की राष्ट्रीय चेतना की। प्रासंगिकता बनी रहेगी।

भारतीय संस्कृति जीवन के उच्च मूल्यों की संस्कृति है। दिनकर ने लिखा है :

उठे जहाँ भी घोष शांति का, भारत, स्वर तेरा है,
धर्मदीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो लड़ने जाता है,
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है।[24]

प्रसाद के नाटकों में शांति और प्रेम का, करुणा और क्षमा का, सहिष्णुता और कृतज्ञता का स्वर भी है, और धर्मदीप को जलाए रखने के लिए सत्य और न्याय की वेदी पर प्राणों का विसर्जन भी है। उनमें 'त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिए, सतीत्व के सम्मान के लिए, देवता, ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास के लिए, आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए' ही अधिकारों का

उपयोग किया जाता है, 'विपन्नों के लिए, अपने धर्म के लिए', देश के लिए विपदा का हंसते हुए आलिंगन किया जाता है वीरता आंधी और उन्माद बन कर नहीं आती बल्कि न्याय की दृढ़ भित्ति पर खड़ी होती है सर्वात्मा के स्वर में विशिष्ट व्यक्तित्व को विस्मृत कर मनोहर संगीत की सृष्टि की जाती है, निर्लिप्त शुद्ध बुद्धि भी न्याय की विजय के लिए ही सांसारिक झगड़ों में हस्तक्षेप करती है दुराचारी व्यक्तियों के पैरों में उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी डाली जाती है और सभी नाटकों में ऐसा बहुत कुछ होता है जो जीवन के लिए महत है, श्रेयस्कर है, रक्षणीय है। जब तक उदात्त सांस्कृतिक मूल्य जीवन के लिए प्रासंगिक रहेंगे, तब तक प्रसाद के नाटकों की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, प्रसाद के नाटक काव्यत्वपूर्ण हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि काव्यत्व उन पर आरोपित है, बल्कि यह कि उनके नाटक काव्य है। प्रसाद की रागात्मक अभिव्यक्ति का विस्तार उनके नाट्यसाहित्य में देखा जा सकता है। उसमें जीवनसंघर्ष से जूझते हुए व्यक्तियों की नियति एवं मानवीय शक्ति संबंधी प्रतिक्रियाएं हैं, जीवनसंबंधों की रागात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रसाद के नाटकों में जीवन, प्रेम, स्मृति, विदा आदि की अनेकानेक मार्मिक अनभतियाँ हैं। जब तक प्रसाद का काव्य हमारे लिए प्रासंगिक रहेगा, तब तक प्रसाद के नाटकों की भी प्रासंगिकता बनी रहेगी।प्रासंगिकता की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में उपलब्ध सांस्कृतिक तत्व, राष्ट्रीय चेतना, जीवनोपयोगी चिंतन और रागात्मक अभिव्यक्ति, सबका महत्व है। देखना चाहिए कि इनमें और प्रसाद के नाट्यशिल्प में क्या संबंध है।

संदर्भ–संकेत :

1. गद्यकार प्रसाद, पृ०–209
2. पत्थर की पुकार– जयशंकर प्रसाद, संजय प्रकाशन, वाराणसी, 1947, पृ०–45
3. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ०–227
4. आकाशदीप– जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, काशी, 1929, पृ०–15
5. ममता– जयशंकर प्रसाद, पृ०–30
6. आकाशदीप, पृ०–48
7. प्रतिध्वनि– जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, काशी, 1967, पृ०–73
8. आकाशदीप, पृ०–60
9. अग्निमित्र– जयशंकर प्रसाद, संजय प्रकाशन, वाराणसी, 1937, पृ०–16
10. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला– मधुरेश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 1989, पृ०–34
11. इरावती– जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015, पृ०–77
12. आँधी– जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, काशी, 1956, पृ०–35
13. वही, पृ०–48
14. वही, पृ०–132
15. पुरस्कार– जयशंकर प्रसाद, संजय प्रकाशन, वाराणसी, 1943, पृ०–153
16. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ०–229
17. प्रसाद का गद्य साहित्य, पृ०–129
18. इन्द्रजाल– जयशंकर प्रसाद, संजय प्रकाशन, वाराणसी, 1947, पृ०–01
19. इन्द्रजाल– जयशंकर प्रसाद, पृ०–11
20. वही, पृ०–134
21. प्रसाद साहित्य, पृ०–64
22. प्रसाद का जीवन दर्शन, कला और कृतित्त्व– मधुरेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ०–380
23. तितली– जयशंकर प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ०–52
24. प्रसाद और उनका साहित्य– नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, 1977, पृ०–62